--- प्रथम अध्याय

-:: वस्तु और शिल्प: भारतीय और पाश्चात्य अवधारणाएँ ::-

(क) वस्तु और शिल्प: कविता के संदर्भ में--

काव्य सृजन एक प्रकार की साधना है जो प्रत्येक सामान्यजन की शक्ति एवं सामर्थ्य से परे है। काव्य के प्रणयन हेतु विशेष प्रकार की 'प्रतिभा' की आवश्यकता होती है।[1] कवि अपनी प्रतिभा शक्ति द्वारा कल्पना को उन्मीलित करके अपने अन्तर्मन की गुहा में सुप्तावस्था में पड़े धूमिल, अस्पष्ट एवं अरूप भावों और विचारों को स्पष्ट और रूपायित करता है। रचयिता की सामूहिक भावनाएँ आन्तरिक प्रेरणा और शक्ति के कारण उद्वेलित होकर बाह्याभिव्यक्ति में रूपान्तरित होती है।[2] प्रत्येक सृष्टि का प्राथमिक रूप मानसिक स्तर पर अवतरित होता है।

संसार के प्रत्येक घटना-चक्र तथा आकर्षण का कवि के संवेदनशील भावुक मन पर प्रभाव पड़ता है। जब इसी सत्य एवं सौन्दर्य को वह रेखांकित करता है, तभी कला का जन्म होता है। अभिव्यक्ति का यही वाङ्मयाकार वह रचना है जो कवि की अनुभूतियों का मूर्त एवं सजीव चित्रण है। कविता का यही सत्य एवं सौन्दर्य पक्ष 'वस्तु' पक्ष को तथा वाङ्मय रूप उसके 'शिल्प' पक्ष का प्रतिनिधित्व करता है।

- -

(१) प्रतिभैव च कवीनां काव्यकरणकारणम् - काव्यानुशासनम् (प्रथम अध्याय)
-- हेमचन्द्र

(2) Transformation of nature in Art- Dr. A.Coomaraswamy
P- 164-169 .

काव्य-सृष्टि का साधन भाषा होती है। समर्थ कवि रचना प्रक्रिया द्वारा एक अमूर्त वस्तु को मूर्त आकार प्रदान करता है। अत: काव्य के आन्तरिक एवं बाह्यपक्षीय रूपों को दृष्टिगत करते हुए काव्य का विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है ---

१-- अनुभूति पक्ष अथवा आन्तरिक पक्ष।

२-- अभिव्यक्ति पक्ष अथवा बाह्यपक्ष।

उपर्युक्त विभाजन में प्रथम `वस्तु` पक्ष है एवं द्वितीय `शिल्प` पक्ष है।

कविता की अन्तश्चेतना का सम्बन्ध कवि की अनुभूतियों तथा भावनाओं से रहता है जो पर्याप्त महत्वपूर्ण है। क्यों कि इस आन्तरिक शक्ति के अभाव में कविता का बाह्य रूप (ढांचा) निर्मित नहीं हो सकता। कविता की इसी आन्तरिक चेतना को `वस्तु` के नाम से सम्बोधित किया जाता है। कविता में `वस्तु` तत्व की भूमिका निर्विवाद स्वीकृत है। जिस प्रकार बिना बीज के वृक्ष तथा बिना आत्मा के शरीर की कल्पना नहीं की जा सकती उसी प्रकार `वस्तु` के बिना काव्य-निर्माण की परिकल्पना नहीं हो सकती। यदि कोई कलाकार `वस्तु` को उपेक्षित कर रूप का निर्माण अपने `शिल्प` कौशल के चमत्कार से करता भी है तो उसमें निष्प्राणता एवं निर्जीवता के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं होगा।

जिस प्रकार एक चित्र अथवा बर्तन या किसी वस्तु को रूप देने के लिए कलाकार को विशेष प्रकार की कारीगरी और निपुणता की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार कविता के रूप निर्माण के लिए भी कवि से एक निश्चित एवं विशेष कौशल और कला - चातुर्य की अपेक्षा

रहती है। तभी तो कविता रूप, रंग और चमत्कार से युक्त हो सकती है। रूप की सबसे बड़ी विशेषता है उसको व्यवस्था देना, और व्यवस्था की इस प्रक्रिया को कविता का शिल्प पक्ष सम्पन्न करता है। कवि-प्रतिभा के अनुसार शिल्प तथा उसी के अनुरूप रूप का निर्माण होता है। वैसे कवि-प्रतिभा के असीमित होने के कारण रूप भी अनन्त हैं।[१] 'शिल्प' जब 'वस्तु' को अपने उपादानों के माध्यम से आकार प्रदान करता है तब कविता जन्म ग्रहण करती है। दूसरे शब्दों में कविता के लिये 'शिल्प' का योगदान एक अनिवार्य शर्त है क्योंकि बिना शैल्पिक प्रतिमानों के कोई भी 'वस्तु' रूप ग्रहण नहीं कर सकती, और बिना रूप के 'वस्तु' की कोई सार्थकता या उपयोगिता नहीं।

(ख) 'वस्तु' और 'शिल्प' के विविध पर्याय--

काव्य के अन्तर्गत 'वस्तु' और 'शिल्प' को अनेक समानार्थी शब्दों के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है जो समान भाव की व्यंजना करते हुए भी असमानता की ओर संकेत करते हैं ---

i) वस्तु::-

'वस्तु' शब्द अंग्रेजी के कन्टेन्ट (Content) शब्द का पर्याय है। हिन्दी में प्रचलित 'वस्तु' शब्द को अनेक समानार्थी शब्दों (कथ्य, अनुभूति, भाव, इतिवृत्त, वर्ण्य, विषय आदि) के संदर्भ में प्रयुक्त किया जाता है। वस्तु के ये समस्त समान भाव व्यंजक शब्द भले ही कविता के अन्तरस्थ की ओर संकेत करते हों परन्तु 'वस्तु' शब्द इनसे कुछ भिन्न अर्थ का द्योतन करता है। कथ्य, वर्ण्य, इतिवृत्त आदि कविता के विषय से

---

(१) अनेनानन्त्यमायाति कवीनां प्रतिभागुण: - ध्वन्यालोक ४।१

अधिक सम्बन्धित हैं, जब कि 'वस्तु' उसकी आन्तरिक चेतना है जो सर्जक के मानस पटल पर उसके परिवेश, परिस्थितियों तथा दृष्टिकोणों में परिवर्तन के फलस्वरूप प्रकारान्तर अवतरित होती है। 'वस्तु' का सीधा सम्बन्ध अनुभूति से है। अत: कवि के मानस की अनुभूतियाँ या उसका भाव बोध ही वह 'वस्तु' तत्व है जो सक्षम 'शिल्प' पाकर काव्य रूप ग्रहण करता है। विषय के साथ जब कवि का रागात्मक और संवेदनात्मक स्तर पर एकत्व हो जाता है तभी 'वस्तु' को जन्म मिलता है। वह 'वस्तु' ही हमारा 'कथ्य' और 'वर्ण्य' होता है जिसे हम कथन या वर्णन करना चाहते हैं। 'शिल्प' के ऊपर 'कथ्य' की प्रमुखता को भारतीय साहित्य चिन्तन-परम्परा का आवश्यक अंग बताकर नामवरसिंह[1] 'कथ्य' शब्द का प्रयोग करते हुए 'वस्तु' की ओर ही संकेत करते हैं। डॉ० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल की मान्यता है कि साहित्य की 'वस्तु' या वर्ण्य के अन्तर्गत रस, भाव, विभाव, विचार, चरित्र, इतिवृत्ति, प्रवृत्ति आदि वह सब समाविष्ट है या हो सकता है जो सृजन के लिए काव्य की सूक्ष्म या स्थूल मूल उपादान सामिग्री बन सकता हो।[2]

ii) विषय::-

'काव्य-विषय एवं काव्य-वस्तु का एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है।[3] परन्तु फिर भी ये दोनों अपना अलग अलग अस्तित्व रखते हैं। काव्य-विषय संसार में भासित आभासित सभी वस्तुएँ हो सकती हैं किन्तु काव्य-वस्तु नहीं। काव्य वस्तु के लिए रागात्मक और संवेदनात्मक स्तर पर कृती का जुड़ना महत्वपूर्ण है। 'काव्य रचना पेड़ या पहाड़ पर

- -

(१) इतिहास और आलोचना - डॉ० नामवरसिंह - पृष्ठ-२५

(२) जयशंकर प्रसाद: वस्तु और कला - पृष्ठ- ५

(३) शुक्लोत्तर काव्य चिन्तन - डॉ० श्यामबिहारी राय - पृष्ठ-४६६
पाश्चात्य परिप्रेक्ष्य

भी हो सकती है पर पेड़ और पहाड़ उसके विषय होंगे, व
कविता का विषय कविता के बाहर जाकर भी लोक-जीवन
सकता है पर काव्य-वस्तु अपनी कृति की संरचना के बाहर
नहीं सकती।[२] कृति की मौलिकता उसके 'विषय' में न हो
'वस्तु' में होती है। कवि पुराने विषय के अन्तर्गत नई व
है तथा नये विषय में पुरानी वस्तु का आरोपण भी कर स

iii) इतिवृत्त ::-

इतिवृत्त अथवा कथानक का प्रयोग नाटक त
संदर्भ में अधिक होता है। यहाँ यह कहना प्रासंगिक होगा
कविता में शैल्पिक अन्तर है। जैसे शास्त्रीय परिभाषा में
तो होता है पर कविता कदापि नहीं है। काव्य के क्षेत्र
कथानक के लिये इतिवृत्त का प्रयोग प्राचीन समय से होता आ
सम्बन्ध कहानी के सम्पूर्ण कलेवर से है चूंकि कविता में कोई
कथा अथवा घटना विशेष का क्रमबद्ध वर्णन नहीं होता अत:
वस्तु पक्ष के अन्तर्गत स्थान नहीं दे सकते। जैसे इतिवृत्त में
तत्व होता है जो कथानक को चारुता एवं उत्कर्ष प्रदान क
शुद्ध कविता तथा उसकी 'वस्तु' इतिवृत्त से प्रतिबद्ध और प्रत

(२) i) '<u>शिल्प</u>' ::-

काव्य-शिल्प के अर्थ में हिन्दी में काव्य रू
शैली, रचना विधा, रूप-विधा, अभिव्यक्ति तथा कला आ

- -

(१) आत्मनेपद - 'अज्ञेय'
(२) शैलीगत विज्ञान और आलोचना की नयी भूमिका - र

शब्दों का प्रयोग हुआ है। विशिष्ट सन्दर्भों में चाहे ये व्यापक अर्थ के विशिष्ट रूपों को उभारते हों परन्तु सामान्य रूप में एक ही अर्थ के द्योतक हैं।[१]

शिल्प को काव्य के प्रणयन हेतु आवश्यक उपादान के रूप में प्रयोग किया जाता रहा है। 'वस्तु' के प्रस्तुतीकरण की प्रक्रिया में उसे अन्तिम रूप शिल्प ही प्रदान करता है। काव्य में भाषा, छन्द, अलंकार, ध्वनि, प्रतीक, बिम्ब आदि मिलकर एक रूप को जन्म देते हैं। प्राचीन काल में वास्तु, मूर्ति और चित्रकला के संदर्भ में शिल्प का प्रयोग होता है जाता है वहां कारीगरी, हुनर आदि इसके व्यंजक अर्थ हैं। काव्य के क्षेत्र में इसे कवि द्वारा अपनाया हुआ 'रचना कौशल' कहते हैं। शिल्प शब्द अंग्रेजी के 'टेक्नीक' (Technique) शब्द के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है। टेक्नीक का प्रयोग काव्य तथा विज्ञान दोनों क्षेत्रों में हुआ है। परन्तु काव्य की शिल्पविधि का क्षेत्र विज्ञान से अधिक व्यापक है। क्यों कि 'काव्य की शिल्प विधि का किन्हीं विशिष्ट तत्वों पर उतनी आधारित नहीं होती, जितनी कि स्रष्टा की उर्वर कल्पना और मौलिक सूझ पर।'[२] शिल्प तो एक माध्यम है, जो काव्य-वस्तु और काव्य-रूप में एकत्व स्थापित कर उसको रूप प्रदान करता है। अतः 'काव्य कृति के निर्माण में जिन उपादानों द्वारा काव्य का ढांचा तैयार किया जाता है वे सब काव्य के शिल्प-तत्व कहे जाते हैं।'[३]

ii) रूप ::-(Form)-::

'रूप' शब्द का प्रयोग सीमित अर्थों में बाहरी ढांचे अथवा आकार के लिए होता है किन्तु व्यापक अर्थों में यह साहित्य अथवा काव्य के

- -

(१) छायावाद का काव्य शिल्प - डॉ० प्रतिमा कृष्णबल - पृ०

(२) आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प - डॉ० कैलाश वाजपेयी - पृ० २०

(३) वही। पृष्ठ- १६

अभिव्यक्ति पक्ष के लिए प्रयुक्त होता है। पाश्चात्य विचारकों ने रूप को व्यापक अर्थों में प्रयोग करके कला और रूप में पार्थक्य प्रतिपादित किया है।[१] विंकलमेन ने सौन्दर्य के तीन भेद करते हुए उसमें अभिव्यक्ति के सौन्दर्य (Beauty of Expression) को ही महत्तर माना है।[२] सिली ने भी रूपगत और अभिव्यक्तिगत सौन्दर्य में पार्थक्य स्थापित किया है।[३] रूप की सर्जना तो शिल्प के द्वारा होती है। कवि का समस्त काव्य कौशल (शिल्प) रूप पर ही निर्भर रहता है। रूप की सृष्टि मानस में अवस्थित रहती है जो उचित शिल्पीय उपादान पाकर आकार ग्रहण करता है। अत: यदि शिल्प एक प्रकार का रचना कौशल या चमत्कार है तो रूप उस कारीगरी के द्वारा निर्मित आकार है। काव्य में बिना शिल्प के कोई भी रूप अपना आकार ग्रहण नहीं कर सकता।

iii) `शैली (Style) ::-

`शैली' और `शिल्प' दोनों ही साहित्य के अभिव्यक्ति पक्ष के लिए प्रयुक्त होते हैं। परन्तु इन दोनों में पर्याप्त अन्तर स्पष्टत: द्रष्टव्य है। `शैली' शिल्प-विधि का एक अंग होने के कारण पक्ष एक आयाम विशेष का भाव देती है जब कि शिल्प सम्पूर्णता का।[४] शैली को स्पष्ट करते हुए डॉ० भगीरथ मिश्र कहते हैं---`शैली या रीति काव्य रचना सम्बन्धी वह विशेषता है जो कवि की प्रकृति और व्यक्तित्व, वर्णयोजना, शब्द संगठन, अलंकार-प्रयोग, भाव-संपत्ति एवं उक्ति वैचित्र्य

---

(१) The use of Poetry and the use of criticism T.S. Eliot --. Page: 35

(२) What is Art : L.Tolstoy - -- Page: 93-94

(३) सौन्दर्य विज्ञान - श्री हरिवंश शास्त्री- पृष्ठ- २५ के आधार पर

(४) आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प - डॉ० कैलाश वाजपेयी- पृष्ठ- २०

के परिणामस्वरूप प्रकाशित होती है ।[1] शैली 'शील' शब्द से निष्पन्न हुआ है जो कवि के आन्तरिक भाव या शील का सूचक है ।[2] शैली एक प्रकार से किसी बात को कहने का ढंग विशेष है, जब कि शिल्प उस ढंग से विशेष के लिए विभिन्न शिल्पीय उपकरणों का योगदान देता है । 'शिल्प' और 'शैली' समानार्थी शब्द न होकर पर्याप्त भाव-भेद के व्यंजक हैं ।

I I) कला (Art) ::-

'कला' शब्द का प्रयोग भी विविध क्षेत्रों में हुआ है । 'अमरकोष' में कला में संगीत (नृत्य वाद्यादि) और शिल्प (स्थापत्य, मूर्ति, चित्रकला) दोनों ही माने गये हैं ।[3] योरोपीय कला, भारतीयकला, उपयोगी कला, ललितकला, सोलह कला तथा काम-शास्त्र की ६४ कलाओं के लिए भी इस शब्द का प्रयोग हुआ है । कला के अन्तर्गत सम्पूर्णता का भाव निहित है जिसमें 'वस्तु' और 'शिल्प' दोनों समाहित हो जाते हैं । काव्य-रचना एक कला है जब कि शिल्प कला की सर्वोच्च परिणति । अत: शिल्प और कला यदि एक दूसरे के पर्याय नहीं तो परस्पर सम्बन्धित अवश्य हैं ।[4] साहित्य के क्षेत्र में कला शब्द के प्रयोग पर कुछ भारतीय विद्वानों ने आपत्ति भी प्रकट की है ।[5]

I I) अभिव्यक्ति (Expression):: -

अभिव्यक्ति शब्द का प्रयोग सीमित और व्यापक दोनों

- -

(१) काव्यशास्त्र - डॉ० भगीरथ मिश्र - पृष्ठ- २०८-२०९

(२) The Science of Emotions- Dr. Bhagwan Dass-P. 354-355

(३) 'कला शिल्पे संगीत मेदेक' अमरकोष

(४) The Science of Emotions-Dr. Bhagwan Dass-P.354-355

(५) चिन्तामणि भाग-२, रामचन्द्र शुक्ल - पृष्ठ- १६५
ब- काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध - जयशंकर प्रसाद पृ० १६,५०

अर्थों में हुआ है। सीमित अर्थ में इसका अर्थ रूप या कला की भांति ही सीमित है तथा व्यापक अर्थ में सम्पूर्ण सृजन का व्यंजक। यथा 'संसार ब्रह्म की अभिव्यक्ति है', 'साहित्य मानव-मन की अभिव्यक्ति है' आदि। शिल्प और अभिव्यक्ति परस्पर सम्बन्धित होते हुए भी पर्याप्त अन्तर को सूचित करते हैं। अभिव्यक्ति शब्द हर प्रकार की अभिव्यंजना को व्यक्त करता है जब कि 'शिल्प' में चयन, संयोजन का भाव निहित है।

निष्कर्ष::-

'वस्तु' के विविध पर्यायों में 'कथ्य' कथा-साहित्य की 'वस्तु' के लिए और 'इतिवृत्त' प्रबंधकाव्य की 'वस्तु' के लिए रूढ़ और प्रासंगिक माने गये हैं। 'विषय' वस्तुत: कच्चा माल है, जिसे अपने अनुभवों और विचारों से जोड़कर रचनाकार -'वस्तु' के रूप में पकाता है। इस प्रकार सभी पर्यायों में 'वस्तु' अधिक संगत और व्यावहारिक है। इसी प्रकार 'शिल्प' के विविध पर्यायों में भी वह संगति और उपयुक्तता नहीं है। 'अभिव्यक्ति पक्ष' कुछ हद तक शिल्प के भाव का बोध कराता है। 'शिल्प' शब्द जिस समुचित त्याग और संग्रह के अर्थ का बोध कराता है वह अन्य पर्यायों में नहीं है।

ग- 'भारतीय काव्य-शास्त्र में वस्तु-विवेचन'::-

यद्यपि संस्कृत साहित्य के आचार्यों, चिन्तकों तथा विद्वानों ने उसके शिल्प पक्ष (अलंकार रीति वक्रोक्ति छन्द आदि) पर ही अधिक विचार किया है तथापि अपने इस विश्लेषण में वे काव्य-वस्तु का विवेचन भी करते गये हैं क्यों कि सभी भारतीय मनीषी 'वस्तु' एवं 'शिल्प' के समन्वय के पक्ष में रहे हैं। 'वस्तु' शब्द का प्रयोग कथात्मक साहित्य के

अन्तर्गत कथावस्तु, वस्तु योजना, इतिवृत्त, तथा वृत्तान्त आदि शब्दों के द्वारा प्रयुक्त हुआ है। महाकाव्य में भी कथानक अथवा कथावस्तु के रूप में इसका प्रयोग हुआ है।

'वस्तु' (Content) शब्द कविता के विशुद्ध अर्थ में प्रयुक्त होता है। 'हिन्दी शब्द सागर' में 'वस्तु' शब्द के अर्थ में सत्य, इतिवृत्त एवं वृत्तान्त प्रयुक्त हुआ है।[1] वस्तु का पदार्थ, द्रव्य आदि के अर्थों में भी प्रचलन हुआ है।[2] भागवतकार[3] ने वस्तु का अर्थ ब्रह्म से भी स्थापित किया है जो कि 'सत्य' के अर्थ की ब्रह्म के रूप में व्यंजना देता है।

संस्कृत साहित्य में भरत से लेकर विश्वनाथ तक 'वस्तु' को ललित विन्यास देने का प्रयास किया गया है। काव्य के आस्वादन के लिए उसकी 'वस्तु' पर विचार किए बिना नहीं रहा जा सकता क्यों कि कविता का प्रभाव उसके वस्तु - पक्ष के द्वारा अनुस्यूत होता है, शिल्प तो उसे सजा - सँवार कर प्रस्तुत कर देता है।

ध्वनिकार आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक में कोरी रीति (कला) को काव्य की आत्मा मानना स्वीकार न करते हुए ध्वनि को तीन भागों में विभक्त किया है -

(१) रसध्वनि (२) अलंकार ध्वनि (३) वस्तु ध्वनि
ध्वनिकार ने 'वस्तु-ध्वनि' को ध्वनि का महत्वपूर्ण भेद स्वीकार किया है।[4]

- -

(१) हिन्दी शब्द सागर (छठा खण्ड) का०ना०प्र०सं०श्यामसुन्दरदास पृ० ३१०७
(२) [illegible] व्यं लौकिकं स्यात सत्यं द्रव्यं वस्तु च - शब्दकल्पद्रुम - चतुर्थभाग पृ० ३११
(३) भागवते ६।४।२७
(४) ध्वन्यालोक

आचार्य धनंजय[१] ने वस्तु की सत्ता को काव्य में स्वीकार किया है। आचार्य विश्वनाथ[२] और पंडितराज जगन्नाथ ने भी वस्तु को ध्वनि का भेद मानकर उसके अस्तित्व को महत्व प्रदान किया है।

सामान्य मानव की भाँति ही कवि जीवन के विविध क्षेत्रों से वस्तु प्राप्त करता है परन्तु कलाकार उसे अपनी प्रतिभा द्वारा आनन्दप्रदायिनी कर कलात्मक रूप में हमारे सामने प्रस्तुत कर देता है। अत: जीवन से सम्बन्धित कोई भी दृश्य और अदृश्य उपादान जो कलारूप में परिणत हो सके काव्य-वस्तु बनने का अधिकारी है। आचार्य भामह भी लिखते हैं --- 'कोई शब्द, कोई अर्थ, कोई न्याय, कोई कला, ऐसी नहीं जो काव्य का अंग न हो या न हो सकती हो। अहो, कवि का भार कितना बड़ा है।'[४] आचार्य रुद्रट के अनुसार भी इस संसार में कोई भी ऐसा वाच्य या वाचक नहीं है जो काव्य का अंग न हो।[५]

४/८ काव्य की आत्मा संस्कृत के आचार्यों ने अपने सिद्धान्त प्रतिपादित करते हुए अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि, रस, तथा औचित्य में प्रतिष्ठित की परन्तु उन्होंने काव्य-वस्तु को सृजन के लिए एक महत्वपूर्ण तत्व मानकर उस पर दृष्टिपात अवश्य किया है। इन सभी आचार्यों ने 'वस्तु' की सत्ता को स्वीकार किया है।

---

(१) दशरूपक - धनंजय पृष्ठ - ११३-११४

(२) साहित्य दर्पण ४।७।८

(३) रस गंगाधर (द्वितीय आनन) - पृष्ठ - १३५

(४) न स शब्दो न तद्वाच्यं न स न्यायो न सा कला।
जायते यन्न काव्यांगं अहो भारो महान्कवे।।
--- काव्यालंकार - ५।४

(५) विस्तरतस्तु किमन्यत्तन्त इह वाच्यं न वाचकं लोके।
न भवति यत्काव्यांगं सर्वज्ञत्वं ततो न्यैषा ।।
--- काव्यालंकार - ११।१६

काव्य-वस्तु पर संस्कृत साहित्य के बाहर भी विद्वानों और चिन्तकों ने अपने मत व्यक्त किये हैं। बाबू गुलाबराय 'वस्तु' और 'रूप' के सामंजस्य में ही कला की पूर्णता मानते हैं। उनके अनुसार वस्तु को वास्तविक जीवन से ग्रहण करना चाहिए। वस्तु और रूप की असंपृक्तता उन्हें असह्नीय है।[१]

भारतीय दृष्टि में रसास्वादन ही काव्य का ध्येय रहा है। अतः जहां आलम्बन ही इसका मूलाधार है वहीं पर अनुभूति या वस्तु को महत्ता दिये बिना काम नहीं चल सकता। कोरी 'वस्तु' को भी काव्य नहीं कहा जा सकता। जब तक कलाकार के चमत्कार से 'वस्तु' एक निश्चित आकार ग्रहण नहीं कर लेती वह निष्प्राण है, निर्जीव है। तथापि सृष्टि के मुख्य उपादान के रूप में 'वस्तु' को महत्व देना ही होगा। भारतीय दृष्टि 'अनुभूति को ही अभिव्यक्ति का स्वरूप निर्धारित करती है।[२] अनुभूति और कल्पना में अनुभूति ही वास्तविक संबेध है, कल्पना केवल साधन-मात्र है।[३]

भारतीय कवियों और विचारकों का मत भी काव्य-वस्तु को उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित करने का समर्थन करता है। रवीन्द्रनाथ टैगोर[४] एवं दास गुप्ता[५] वस्तु को महत्व देते हुए रूप के साथ उसके सामंजस्य के पक्षपाती हैं। वे दोनों के एकत्व में ही कला की उदात्तता के दर्शन करते हैं।

---

(१) सिद्धान्त और अध्ययन (छठा संस्करण) गुलाबराय - पृष्ठ- २२२
(२) काव्य में उदात्त तत्त्व (भूमिका) डॉ० नगेन्द्र - पृष्ठ- ११
(३) हिन्दी ध्वन्यालोक - (भूमिका) डॉ० नगेन्द्र - पृष्ठ- ७०
(४) Persnality - -- Page: 20
(5) Fundamental of Indian Art (1960) Dr. Das Gupta Page: 137-138

डॉ० राधाकृष्णन[१] भी वस्तु की सत्ता स्वीकार करते हुए उसे गौरव प्रदान करते हैं। जयशंकर प्रसाद ही ऐसे कवि हैं जो अनुभूति को ही गौरव प्रदान करते हैं। वह व्यंजना को अनुभूतिमयी प्रतिभा का स्वयं परिणाम मानते हुए काव्य-वस्तु की अनिवार्यता स्वीकार करते हैं।[२]

निष्कर्ष ::-

काव्य में 'वर्ण्य' या 'वस्तु' का महत्व निर्विवाद है। इसे संस्कृत के आचार्यों से लेकर हिन्दी के विद्वान एवं भारतीय चिन्तकों ने एक मत से स्वीकारा है। काव्य-वस्तु के सम्बन्ध में भारतीय दृष्टिकोण व्यापक है। क्योंकि कोई भी स्थूल या सूक्ष्म भाव जो संवेदना के धरातल पर ग्रहण किया जाय काव्य-वस्तु बन सकता है। बिना अनुभूति या वस्तु (शास्त्रीय शब्दावली में विभाव पक्ष) के रसोद्रेक नहीं हो सकता जो कि भारतीय काव्य-दृष्टि की अन्तिम और अनिवार्य परिणति है। भारतीय चिन्तन परम्परा स्वस्थ आत्मा की अपेक्षा करती है, जिससे स्वस्थ शरीर की कल्पना की जा सके।

(ख) 'वस्तु सम्बन्धी पाश्चात्य मत' ::-

अंग्रेजी साहित्य में हिन्दी के 'वस्तु' शब्द के लिए कण्टेण्ट (Content) शब्द का प्रयोग करते हैं। इस शब्द के साथ रूप शब्द का प्रयोग प्राय: होता है यथा -'वस्तु' और 'रूप' (Content and form)

---

(1)" Form and content are closely found up and only great thing can give great Poetry."

--- An Idealist view of life - S. Radha Krishanan- Page: 190

(२) काव्य और कला तथा अन्य निबंध - जयशंकर प्रसाद - पृष्ठ - २५

'वस्तु' शब्द के लिए अंग्रेजी में कहीं - कहीं 'मैटर' (Matter) शब्द भी प्रयुक्त हुआ है जो कि 'कण्टेण्ट' शब्द की ही व्यंजना करता है।

पाश्चात्य साहित्य में दो अतिवादी विचारधाराएँ देखने को मिलती हैं जिनमें एक 'स्थूल' वस्तु को प्रधानता देता है तो दूसरा निस्संग रूप (शिल्प पक्ष) की कल्पना करता है। 'प्लेटो' विचार (Idea) को प्राथमिकता देता है, तो क्रोचे कोरे रूप की कल्पना करके उसे समर्थन देता है।

यदि क्रोचे के सिद्धान्त का सूक्ष्म विश्लेषण किया जाय तो आभासित होता है कि वह रूप के कारण ही 'वस्तु' की सत्ता का समर्थक है। 'वस्तु' के दर्शन पर विवेचन करते हुए उनका मत है -- 'वस्तु' या 'द्रव्य' के बिना हमारी आध्यात्मिक क्रिया खोखली रह जायेगी उसके बिना वह वास्तविक और मूर्त रूप धारण न कर सकेगी।[१] अपने विचारों को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि 'वस्तु' का महत्व उसके रूप में परिवर्तन होने के बाद ही होता है वह 'वस्तु' को अस्तित्व शून्य नहीं वरन् हमारी स्वयं प्रकाशजन्य क्रिया के बिना ज्ञेय नहीं मानते।[२]

'सिडनी' काव्य के अन्तर्गत 'वस्तु' एवं 'रूप' दोनों की सत्ता को स्वीकार करते हुए मानव प्रकृति के यथार्थ व सजीव चित्रण में ही कला की पूर्णता देखते हैं।[३] 'जानसन' भी वस्तु को महत्ता प्रदान करते हैं।[४] काव्य के लिए 'वर्ड्सवर्थ' वस्तु तत्व की यथार्थता पर बल

---

(१) पाश्चात्य समीक्षा दर्शन -- जगदीश चन्द्र जैन - पृष्ठ - ३५३ के आधार पर

(२) वही। पृष्ठ - ३५६ के आधार पर

(३) Critical Approaches to literature- David Daiches Page: 66 to 68

(4) Ibid - Page: 98.

देते हैं ।[1] जब कवि अपनी सूक्ष्म अनुभूति के आधार पर जीवन से 'वस्तु' का चयन करेगा तो उसमें यथार्थता का बोध अवश्य होगा । इस 'वस्तु' यथार्थ के साथ उसका 'शिल्प' भी रमणीक होगा । 'कॉलरिज' के विचार से रमणीय रूप का सृजन 'वस्तु' की मूल प्रकृति से सहज रूप में ही नि:सृत होता है ।[2]

काव्य-वस्तु के जिन पाश्चात्य विवेचकों ने रूप को महत्व दिया है उन्होंने भी 'वस्तु' का स्थान उपेक्षणीय नहीं माना है । उनकी दृष्टि में 'वस्तु' का स्थान गौण अवश्य हो गया है । विरोधी आचार्यों ने भी किसी न किसी रूप में 'वस्तु' की महत्ता को स्वीकार किया है । 'वर्डस फोल्ड'[3] और 'अबर क्राम्बी'[4] रूप तत्व को महत्ता देते हुए भी बिना वस्तु तत्व के रूप की सत्ता नहीं मानते ।

'हर्बर्ट रीड' ने कविता के वस्तु तत्व का विवेचन किया है । उनके अनुसार जब वस्तु रूप के साथ अपना तादात्म्य स्थापित कर लेती है तभी हम किसी मौलिक सृजन की कल्पना कर सकते हैं ।[5] 'कॉलरिज' ने भी

---

(1) Critical approaches to literature- Page: 97-98

(2) You can not derive true and permanent pleasure out of any feature of a work which does not arise naturally from the total nature of the work.
--- Ibid - Page: 102.

(3) The form can not be simply a form, It must be the form of some thing.
--- Principles of literary criticism - Page: 125.

(4) "Form itself can not be significant. Form cam only exist as the form of substance and the significance given by form is significance which form gives to substance-
--- Ibid- L. Abbercrombie . Page: 57

(5) Principles of literary criticism.- Page: 56

'वस्तु' की सत्ता को स्वीकार किया है परन्तु रूप को विशेष महत्व प्रदान करके ।[1] बिनयन (Binyon) साहित्य में उसी वस्तु तत्व को ग्रहण करना चाहते हैं जिसे साहित्यकार संवेदनात्मक धरातल पर स्पर्श कर चुका हो ।[2] अर्थात् अनुभूतिजन्य काव्य-वस्तु ही कविता में सौन्दर्य की वृद्धि कर सकती है तथा काव्य के प्रधान लक्ष्य को सार्थक कर सकती है । सेंटविसल[3] एवं मैथ्यू आर्नल्ड[4] आदि ने भी साहित्य (काव्य) क्षेत्र में 'वस्तु' का महत्व निर्विवाद माना है ।

इन कला चिन्तकों के साथ ही कुछ मार्क्सवादी कला विवेचक भी हैं जिन्होंने काव्य-वस्तु के महत्व का प्रतिपादन करते हुए अपने तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किए हैं । इन काव्य समीक्षकों में 'अनातोली लूनाचार्स्की' एवं 'आर्नेफिशर' का नाम महत्वपूर्ण है । वे दोनों ही विद्वान काव्य के वस्तुतत्व की ओर विशेष आग्रह करते दीख पड़ते हैं । लूनाचार्स्की के अनुसार 'वस्तु' के लिए 'शिल्प' को खोजना व्यर्थ है क्योंकि काव्य-वस्तु स्वयं अनुकूल रूप की तलाश कर लेती है । 'वस्तु' ही रूप का निर्धारण करती है[5] लूनाचार्स्की कला की मौलिकता उसकी 'वस्तु' की मौलिकता में मानते हैं ।

---

(1) When a work of art has its own inherent law originating with its very invention and fusing in on vital unity both structure and content, then the resulting form may be described as organic.
--- Collected Essay in criticism- Herbert Read- Page: 19

(2) In other words, we have adepted the stand point of Poetry itself, and so long as we find in it the finer spirit of all knowledge. We are contant to believe that nature herself will provide an appropriate vehicle for its utterances.
--- "Principles of literary criticisum- W.B.Worsfold-P.47

(3) The study of Peotry- A.R.Entwistle: P: 218

(4) The Function of criticisum, Mathew arnold's Essary.

(5) It is especially evident in literature that it is the artistic content-The flow of thoughts, emotions in the form of images or connected with the images-which is the decieve elements of the work as a whole. The content strives of itself towards a definite form.
--- On literature and art- A. Lunacharsky- Page: 14

उनके अनुसार मौलिक वस्तु के अभाव में रचना मूल्यहीन तो हो ही जाती है उसका रूप भी निष्प्राण एवं निर्जीव हो जाता है। पुरानी 'वस्तु' को अनेक रूपों में प्रस्तुत करना मौलिकता नहीं यह रूपवादी आग्रह है।[१]

आर्नेफिशर की 'वस्तु' सम्बन्धी व्याख्या अधिक वैज्ञानिक है। इन्होंने 'वस्तु' में परिवर्तन से सम्बन्धित दो सिद्धान्तों की ओर संकेत किया - १- द्वन्द्वात्मक २- आवयविक एकता

फिशर की मान्यता है कि वस्तु में परिवर्तन के साथ ही रूप में भी परिवर्तन होता है। रूप का पहले 'वस्तु' के साथ संघर्ष (द्वन्द्व) तथा फिर रूप में विस्फोट होकर नया सृजन (रूप) जन्म लेता है।[२] काव्य में वस्तु तत्व परिवर्तनशील है अतः फिशर महोदय लिखते हैं कि हम कला रूप को स्थिर तथा कलावस्तु को क्रान्तिकारी की संज्ञा दे सकते हैं।[३] फिशर की दूसरी निष्पत्ति आवयविक एकता (organic unity) की है। जब हम किसी पौधे या प्राणी को नया पोषक तत्व देते हैं तो उसकी आन्तरिक 'वस्तु' में परिवर्तन होता है। यह आन्तरिक परिवर्तन उसके बाह्याकार को भी प्रभावित करता है। इसी नियम को उसने कविता पर आरोपित किया।

जार्ज लुकाच 'वस्तु' का महत्व प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि विषयवस्तु की नवीनता नए कला रूपों की मांग करती है।[४] एजरा पाउण्ड भी काव्य में 'वस्तु' को आवश्यक उपादान मानते हैं। यदि कविता 'वस्तु' या भाव से शून्य है तो चाहे कैसा भी शिल्पगत चमत्कार हो, वह उसको आकारात्मक सौन्दर्य तो प्रदान करता है लेकिन मात्र आकार का

---

1) On literature and Art-A Lunacharsky- Page: 20-21
2) The Necessity of Art- Ernest Fisher- Page: 124
3) Ibid- -- Page: 125
4) "The complexity of a new subject matter will demand a variety of new form" The meaning of contenpasy. realism- Lukacs- Page: 108

संमार उसको स्थायी नहीं बना पाता है ।[१]

पाश्चात्य साहित्य के सभी आचार्यों ने किसी ने मुख्य रूप में तो किसी ने गौण रूप में 'वस्तु' सत्ता को स्वीकार किया है । रूपवादियों ने रूप के सम्बल से ही वस्तु की कल्पना की है । परन्तु कला के उत्कर्ष के लिए 'वस्तु' तत्व की महत्ता है क्योंकि नवीन सृजन जीवन के नये झरोखों से देखने के बाद ही होगा जिसमें नई दृष्टि होगी नई विचारधारा तथा नवीन भावबोध ।

भारतीय एवं पाश्चात्य मान्यताओं को देखने से यह निष्कर्ष हाथ लगता है कि,हालांकि,बहुत से विद्वानों और चिंतकों ने 'वस्तु' और 'शिल्प' को अपनी अतिवादी दृष्टि से श्रेष्ठ ठहराया है फिर भी प्रबुद्ध विचारकों का एक बड़ा वर्ग 'वस्तु' और 'शिल्प' के समान महत्व पर बल देता है ।

शिल्प सम्बन्धी भारतीय अवधारणा:

'शिल्प' शब्द संस्कृत वांङ्मय में समस्त कलादिक कर्मों के लिए प्रयुक्त हुआ है ।[२] वृहद् हिन्दी कोष में 'शिल्प' को रूपायित करते हुए कहा है - 'शिल्प से अभिप्राय हाथ से कोई 'वस्तु' तैयार करने अथवा दस्तकारी या कारीगरी से है'।[3] हिन्दी शब्द सागर[4] में भी दस्तकारी

---

(१) Make it new - Ezra Pound : Page: 213

(२) कलादिकं कर्म्म । - - - - हुनर इति पारसीक भाषा । कारीगरी इति हिन्दी भाषा ।। वात्स्यायनोक्तनृत्यगीतवाद्यादिश्चतुषष्टि: बाह्य क्रिया: तथा आलिंगन चुम्बनादिचतुषष्टि: अभ्यन्तर क्रिया कला: । आदिना स्वर्णकारादिक्कारुकर्म्मग्रह । एतत् सर्वं शिल्पं कथ्यते । कथा सरित्सागरे --- शब्द कल्पद्रुम भाग पंचम - पृष्ठ - ७७-७८ - २५।१७५

(३) वृहद् हिन्दी कोष (ज्ञानमंडल लिमिटेड बनारस) पृ० १३३४

(४) हिन्दी शब्द सागर - सं० श्यामसुन्दरदास १९२७ ठ छठाखण्ड पृष्ठ - ३३२१

हुनर तथा कारीगरी के अर्थ में इसका प्रयोग हुआ है ।

किसी कलाधर्मी द्वारा निर्मित वस्तु मूर्ति और चित्रकला के विशेष अर्थ में जिसमें कलाकार अपनी प्रज्ञा, विचार तथा भावनाओं द्वारा किसी रूपाकार को जन्म देता है 'शिल्प' के अन्तर्गत समाहित किया जा सकता है । आचार्य भरत ने भी 'शिल्प' से माला, चित्र अथवा खिलौना आदि की रचना (योजना) का अभिप्राय ग्रहण किया है ।[1]

काव्य में 'शिल्प' शब्द का प्रयोग उसके अभिव्यक्ति पक्ष (कला पक्ष) के लिए होता है । इस शब्द के अर्थ के संदर्भ में रूप एवं कला आदि शब्दों का प्रयोग आदि काल से अद्यावधि होता चला आ रहा है ।' काव्य-कृति के निर्माण में जिन उपादानों द्वारा काव्य का ढांचा तैयार किया जाता है वे सब काव्य के 'शिल्प' तत्त्व कहे जाते हैं । शिल्पविधि रचना की उन प्रमुखताओं का लेखा जोखा है, जिनके आधार पर रचना मूर्त हो सकी है अथवा विशिष्ट भंगिमा के साथ लेखनी द्वारा अवतरित हुई है ।'[2]

रूप की सर्जना में कवि द्वारा अपनाया गया [illegible] चमत्कार जो कि शब्द और अर्थ द्वारा प्रकट होता है काव्य के शिल्पीय उपादान के अन्तर्गत आता है । यदि 'शिल्प' की सैद्धान्तिक व्याख्या करें तो काव्य-विधान काव्य का विज्ञान है । कविता करने की विधि से लेकर कविता सम्बन्धी गुण-दोषों का विधिवत् ज्ञान उसके भीतर आ जाता है और उस ज्ञान का आत्म प्रकाशन काव्य-शिल्प है ।'[3]

संस्कृत के आचार्यों ने भारतीय काव्य-शिल्प विधि का विवेचन अपने विभिन्न सम्प्रदायों के अन्तर्गत किया है । काव्य शिल्प-विधि

- -

(१) शिल्पमिति माला- चित्रयुरन्तादियोजनम्' [illegible]

(२) आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प - डॉ० कैलाश वाजपेयी- पृष्ठ- १६

(३) आधुनिक हिन्दी काव्य-शिल्प - डॉ० मोहन अवस्थी - पृष्ठ- ६

के महत्वपूर्ण अंग के रूप में सर्व प्रथम 'शब्द' आता है। बिना शब्द के कविता की कल्पना नहीं की जा सकती। शब्द और अर्थ मिलकर 'पद' का संघटन करते हैं यही पद लयात्मक रूप में छन्द में परिवर्तित हो जाता है। काव्य शिल्पविधि के प्रारम्भिक तत्व शब्द, छन्द और लय हैं जिनके आधार पर काव्य का ढांचा तैयार किया जाता है। ये ही वे मूलभूत तत्व हैं जिनका विचित्र संयोजन तथा सहज प्रयोग पद्य (कविता) के रूप में साहित्य में स्थान ग्रहण करता है।[1]

काव्य में कवि द्वारा उत्पन्न किया गया चमत्कार शब्द और अर्थ के माध्यम से प्रकट होता है। भारतीय काव्य-शास्त्र के 'अलंकार, रीति, वक्रोक्ति' आदि शब्दगत चमत्कार के ही अंग हैं। अर्थगत चमत्कार के अन्तर्गत 'ध्वनि, रस आदि आते हैं। अर्थगत चमत्कार में रस भी सम्मिलित हो सकता है, किन्तु वह रस ध्वनि-सम्प्रदाय के अन्तर्गत आने वाला ध्वनि-भेद ही है। रस निष्पत्ति साहित्य की एक अलग विधा है जिसका चमत्कार से कोई सम्बन्ध नहीं है वह अन्तरात्मा है, बाह्य शिल्पतत्व नहीं है।[2]

अलंकार::-

शब्दगत चमत्कार के अन्तर्गत शिल्पविधि का सबसे महत्वपूर्ण अंग अलंकार है। आचार्य भरत से लेकर भामह तक सभी ने अलंकारों को 'शिल्प' का आवश्यक अंग बताया है। भरत ने अलंकारों की संख्या चार (अनुप्रास, उपमा, रूपक, दीपक) निर्धारित की जब कि कुवलयानन्द तक आते-आते इनकी संख्या १२५ तक हो गई। आचार्य भामह वक्रोक्ति को ही समस्त अलंकारों का कारण मानते हैं। जो अर्थ की वक्रता को स्पष्ट करे, वक्रोक्ति है।

---

(१) आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प - डॉ० कैलाश वाजपेयी - पृष्ठ- २४
(२) आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प - डॉ० कैलाश वाजपेयी - पृष्ठ- २४

इसके बिना कोई अलंकार नहीं है, क्यों कि अर्थ को विभामय करने वाली समस्त विधा वक्रोक्ति ही है ।[१]

संस्कृत के अनेक परवर्ती विद्वानों मम्मट, जयदेव, उद्भट, रुद्रट, भोज, रूय्यक, विश्वनाथ, जगन्नाथ ने भी काव्य में अलंकारों का स्थान स्वीकार किया है । अलंकार शब्द और अर्थ दोनों ही प्रकार से कविता को सौन्दर्य (चमत्कार) प्रदान करते हैं । अलंकार भारतीय काव्य-शिल्प-विधि का एक महत्त्वपूर्ण उपादान है ।

रीति :: -

रीति सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य वामन ने 'रीतिरात्मा काव्यस्य' लिखकर रीति या शैली को काव्य की आत्मा कल्पित किया । इनके अनुसार माधुर्य आदि गुणों से युक्त रचना ही रीति है ।[२] रीति अभिव्यक्ति का एक ढंग या प्रकार है । वामन के अतिरिक्त रीति सम्प्रदाय में कोई ऐसा आचार्य नहीं मिलता जिसने रीति पर मनन किया हो । वर्णित सम्प्रदायों के आचार्यों ने रीति पर विचार किया है ।

आनन्दवर्धन ने रीति को संघटना कहकर उसे रस से सम्बन्धित करने का प्रयास किया है ।[३] भोज और आचार्य मम्मट ने भी रीति को महत्त्वपूर्ण बताते हुए विचार किया है ।

आचार्य विश्वनाथ ने भी आनन्दवर्धन के समान रीति का स्वरूप निर्धारित किया है - पदों की संघटना का नाम रीति है। वह अंग

---

(१) सैषा सर्वैव वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते
यत्नोऽस्यां कविना कार्यः कोऽलंकारोऽनया विना। २।८५ काव्यालंकार भामह

(२) विशिष्टपद रचना रीतिः १।२।७ काव्यालंकार सूत्र - वामन

(३) व्यनक्ति सा रसादीन - ध्वन्यालोक - आनन्दवर्धन

संस्थान (शारीरिक गठन) की भांति है और काव्य आत्मरूप रसादि का उत्कर्षवर्धन करती ।[1]

रीति के सम्बन्ध में मत वैभिन्य होते हुए भी हम एक सामान्य निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि विशिष्ट पद रचना ही रीति है। पद में शब्द और अर्थ सम्बन्धी समस्त गुण श्लेष, समता, ओज तथा माधुर्य कांति प्रसाद एवं उदात्तता आदि सभी समाहित हो जाते हैं।

संस्कृत में शैली शब्द किसी व्याख्यान पद्धति के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है परन्तु आज रीति के स्थान पर 'शैली' शब्द का प्रयोग है। अत: शिल्पविधि के उपादान स्वरूप जब हम शैली का अध्ययन करते हैं तब रीति के अंगों का समावेश भी शैली के अन्तर्गत हो जाता है।[2]

वक्रोक्ति ::-

वक्रोक्ति सम्प्रदाय के प्रस्थापक आचार्य कुन्तक हैं। प्राचीन संस्कृत साहित्य में क्रीड़ा-कलाप या परिहास के अर्थ में इसका प्रयोग हुआ है। महाकवि बाण के 'वक्रोक्ति निपुणेन विलासीजनेन' कथन से तथा अमरुकशतक[3] में भी परिहास के अर्थ की ध्वनि प्रतीत होती है।

वक्रोक्ति शब्द में साधारण कथन से भिन्न कथन की वक्रता का द्योतन होता है। आचार्य भामह ने वक्रोक्ति को अतिशयोक्ति का पर्यायवाची मानते हुए समस्त अलंकारों का मूल भी स्वीकार किया है।[4]

- -

(१) पद संघटना रीतिरंग संस्था विशेषवत् ।
उपकर्त्री रसादीनाम् - ९।१ साहित्य दर्पण - विश्वनाथ

(२) आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प - डॉ० कैलाश वाजपेयी - पृष्ठ - ३०

(३) सा पत्यु प्रथमेऽपराधसमये सख्योपदेशं विना
नो जानाति स विभ्रमांगवलना वक्रोक्ति संसूचनम्
स्वच्छैरच्छ कपोलमूलगलितै पर्यस्तनेत्रोत्पला
बाला केवलमेव रोदिति लुठल्लोलोदकैरश्रुभि: ।। २९ (अमरुकशातकम्)

(४) सैषा सर्वैव वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते
यत्नोऽस्यां कविना कार्य: कोऽलंकारोऽनया विना। २।८५ काव्य

वामन ने वक्रोक्ति को अपना मत वैभिन्य रखते हुए अर्थालंकारों में स्थान दिया। आचार्य भामह के बाद अन्य आचार्यो अभिनव गुप्त,[1] भोज[2] तथा दण्डी[3] आदि ने भी वक्रोक्ति को विलक्षण प्रयोग कहते हुए अलंकारों का सामूहिक रूप व्यंजित किया है।

वक्रोक्तिकार कुन्तक ने 'वक्रोक्ति: काव्य जीवितम्' लिखकर वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा माना। कुन्तक वक्रोक्ति को पारिभाषित करते हुए लिखते हैं--- वैदग्ध्यपूर्ण विचित्र उक्ति ही वक्रोक्ति है। वैदग्ध्य से आशय विदग्धता, कवि कर्म कौशल, उसकी भंगिमा द्वारा उस पर उक्ति। विचित्र अभिधा का नाम ही वक्रोक्ति है।[4]

कुन्तक ने वक्रोक्ति को छ: भागों में विभाजित किया-
१- वर्ण विन्यास वक्रता २- पद पूर्वार्द्ध वक्रता ३- पद परार्द्ध वक्रता
४- वाक्य वक्रता ५- प्रकरण वक्रता ६- प्रबंध वक्रता।

कुन्तक का वक्रोक्ति सम्प्रदाय काव्य के अभिव्यक्ति पक्ष को ही अधिक प्रदर्शित करता है। शिल्प के अधिकतर उपादान वक्रोक्ति में समाहित हैं। वक्रोक्ति काव्य शिल्पविधि का महत्वपूर्ण अंग है।

---

(१) शब्दस्य हि वक्रता अभिधेयस्य च वक्रता लोकोत्तीर्णेन रूपेण अवस्थानम्
लोचन अभिनव गुप्त - पृष्ठ- २८०

(२) वक्रोक्तिश्च रसोक्तिश्च स्वभावोक्तिश्चेति वाङ्मयम् -(सरस्वती कंठाभरण

(३) श्लेष: सर्वासु पुष्णाति प्रायो वक्रोक्तिषु श्रियम्
भिन्नं द्विधा स्वभावोक्ति, वक्रोक्तिश्चेति वाङ्मयम्। ३।२६३ काव्यादर्श- दण्डी

(४) कीदृशी, वैदग्ध्यभंगीभणितिः। वैदग्ध्यं विदग्धभावः कविकर्मकौशलं, तस्य भंगी विच्छित्तिः तथा भणितिः। विचित्रैवाभिधा वक्रोक्तिरित्युच्यते-
वक्रोक्ति जीवितम् कारिका १।१० का भाष्य

ध्वनि::-

ध्वनि अर्थगत चमत्कार के अन्तर्गत आता है। ध्वनिकार आनन्दवर्धन ने ध्वनि पर विचार करते हुए लिखा है- जहां अर्थ स्वयं को शब्द के अपने अभिधेय अर्थ को गौण करके उस अर्थ को प्रकाशित करते हैं उस काव्य विशेष को विद्वानों ने ध्वनि कहा है।[1] अपनी व्याख्या स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं-- जहां विशिष्ट वाच्य रूप अर्थ तथा विशिष्ट वाचक रूप शब्द उस अर्थ को प्रकट करते हैं तब उस काव्य विशेष को ध्वनि के नाम से अभिहित करते हैं।[2] अत: ध्वनिकार का तात्पर्य वाच्य अर्थ के भीतर किसी प्रतीयमान अर्थ से है। वाच्य अर्थ के अन्तर्गत अलंकार तथा प्रतीयमान के अन्तर्गत ध्वनि का समावेश होता है।

ध्वनिकार ने ध्वनि को तीन भागों में विभक्त किया है--

१- रसध्वनि २- अलंकार ध्वनि ३- वस्तु-ध्वनि ।

रस ध्वनि के अन्तर्गत नवरस आते हैं जो ध्वनित होते हैं। यह रस वाच्य न होकर इनकी प्रतीति भर होती है। इसी रस ध्वनि को हम काव्य शिल्प के अर्थगत चमत्कार के अन्तर्गत समाहित करते हैं।

कवि समय (काव्य रूढ़ि), वर्णन पद्धति और प्रबंधत्व को भी आचार्यों ने शिल्प के अन्तर्गत लिया है।

---

(१) यत्रार्थ: शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृत स्वार्थौ
व्यंक्त: काव्य विशेष: स ध्वनिरिति सूरिभि: कथित: ।१।१३। ध्वन्यालोक

(२) यत्रार्थो: वाच्यविशेषो वाचक विशेष: शब्दो वा
तमर्थव्यंक्त: स काव्यविशेषो ध्वनिरिति। व्याख्या कारिका।१।१३

निष्कर्ष ::-

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय चिन्तकों ने शिल्प के अन्तर्गत शब्दगत चमत्कार के विधायक अलंकार वक्रोक्ति, रीति आदि को लिया है और अर्थगत चमत्कार से संबद्ध ध्वनि भी उसके अन्तर्गत समाहित है ।

(च) शिल्प सम्बन्धी पाश्चात्य अभिमत ::-

'शिल्प' शब्द के लिए अंग्रेजी में टेक्नीक[1] (Technique) शब्द का प्रयोग किया जाता है । शिल्प शब्द का प्रयोग काव्य के क्षेत्र में बहुत प्राचीन नहीं है । अब तक इसका प्रयोग रूप (Form) ढांचा (Structure) आकार (Shape) आदि के द्वारा होता आया है । भारतीय काव्यशास्त्र की भांति ही पहले शिल्प का प्रयोग ललित कलाओं के संदर्भ में ही हुआ । 'कलात्मक कार्यविधि की वह रीति, जो संगीत अथवा चित्रकला में प्राप्य है,' को शिल्प कहा गया है । अंग्रेजी साहित्य में भी शिल्प शब्द का प्रयोग कवि कर्म कौशल अथवा अभिव्यक्ति पक्ष के लिए ही किया गया है ।

शिल्प सम्बन्धी विभिन्न उपादानों का विवेचन पाश्चात्य काव्यशास्त्र में तथा विद्वानों ने इस प्रकार किया है :-

छन्द योजना::-

आंग्ल भाषा के अन्तर्गत छन्द चार प्रकार के माने गये हैं । शिल्पविधि के अनुसार काव्य को पिंगल (छन्द शास्त्र) से सम्पृक्त करते हुए

---

(1) Oxford Dictionary of Current English- Page: 1258

प्रो० केर लिखते हैं -- " पिंगल विज्ञान है जो कुछ पद्य में रचा गया है केवल वही नहीं, वल्कि कविता के सृजन से पूर्व उसका छायामय अशरीरी संगीत भी जो कवि के मन में रहता है।"[१]

पाश्चात्य साहित्य में मुक्तक रचना को शिल्प के आधार पर चार भागों में विभाजित किया गया है --
१ - बैलेड (Ballad) २ - स्टैन्जा (Stanza) सानेट (Sonnet)
४ - ओड (Ode)

बैलेड पद्य कथा लिखने की गीतात्मक प्रणाली है जिसमें भाव प्रधानता मुख्य होती है। स्टैन्जा की विशेषता उसकी तुकान्तता में है इसमें अन्तिम दो पक्तियों में पूर्व की छ: पक्तियों का निष्कर्ष होता है। सानेट आंग्ल तथा इटैलियन दो रूपों में पाया जाता है। इसमें १४ पक्तियाँ होती हैं तथा दो भागों में बंटी होती है। ओड एक प्रकार का छन्दबद्ध सम्बोधन गीत है जिसमें अप्रत्यक्ष रूप से सहानुभूति का भाव रहता है।

मुक्त छन्द:: -

जो शास्त्र सम्मत नियमों से मुक्त हो उसे मुक्त छन्द कहते हैं। अंग्रेजी साहित्य में इस छन्द का प्रयोग प्राय: मिलता है। डी०एच लौरेंस, एजरा पाउण्ड, वाल्टव्हिटमैन आदि की रचनाओं में यह छन्द देखा जा सकता है। शिल्प कौशल की दृष्टि से मुक्त छन्द आवश्यक उपादान है।

अलंकार:: -

पाश्चात्य काव्य शिल्प के अन्तर्गत अलंकार को एक आवश्यक

- -

(1) Forms and Style in Peotry- Prof. Ker. Page: 11

अंग के रूप में स्वीकार किया गया है। प्रो० होम्स[1] ने अलंकारों की संख्या दो सौ पचास (२५०) के लगभग निर्धारित की तो मैकबेथ[2] ने इनकी संख्या दो सौ बीस (२२०) के लगभग मानी। परन्तु काव्य के अन्तर्गत इतने अलंकारों का प्रयोग न होकर कुछ विशेष अलंकारों का प्रयोग ही मिलता है यथा,

रूपक (Metaphor) उपमा (Simile) मानवीकरण (Personification) प्रतीक (Symbol) अतिशयोक्ति (Hyperbole) स्मरण (Oxymoron) तथा विरोधाभास (Onomatopoeia) ।

प्रतीक:

पाश्चात्य काव्य-शास्त्र के अन्तर्गत प्रतीक को शिल्प के एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में मान्यता दी गई है। 'प्रतीक' शब्द का प्रयोग चिन्ह संकेत आदि के रूप में होता है परन्तु साहित्यिक अर्थ में एक सत्य के स्तर पर दूसरे वैसे ही सत्य का उल्लेख ही प्रतीक है।[3] संसार की प्रत्येक वस्तु के पीछे गोपन भाव की अभिव्यक्ति हेतु 'प्रतीकों' का सहारा लिया जाता है। प्रतीक अभिधेय अर्थ से इतर व्यापक अर्थ की व्यंजना करता है इसलिए अदृश्य 'वस्तु' के लिए दृश्य चिन्ह माना जाता है।[4] गणित तर्कशास्त्र तथा मनोविज्ञान में प्रतीक अपने भिन्न अर्थों का द्योतन करते हैं।

सर्व प्रथम सन् १८८६ में कुछ पराभववादी (Decadent) की विचारधारा वाले चिन्तकों ने फायगारो (Figaro) नामक पत्रिका में

---

(1) Rhetoric Made Essary- Prof.- Holms P- 10

(2) The might and Mirth of literature- Vilcent Macbeth -- Page: 32

'प्रतीक' के सम्बन्ध में घोषणा करते हुए कहा कि प्रतीक बौद्धिकता की अभिव्यक्ति न करके मानसिक स्थिति की अभिव्यंजना करते हैं।[1]

फ्रांसीसी कवि बादलेयर उन्नीसवीं सदी में प्रतीक को एक नाद का रूप दिया। बादलेयर के बाद वर्ले और रिम्बो ने प्रतीकवाद के सिद्धान्तों की स्थापनाएँ की जो बादलेयर से ही प्रभावित हैं। प्रतीक वादी सिद्धान्त के अनुसार ही जब अभिधा व्यंजना अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देने में असमर्थ हो गई तो अतुकान्त शैली और मुक्त छन्द ने जन्म लिया।

प्रतीकवादी कवियों में मलार्मे का महत्त्वपूर्ण स्थान है मलार्मे ने प्रतीक के साथ कल्पना तथा भावना को संपृक्त किया जब कि पालवैलेरी ने कल्पना, स्वप्न, भाव, आवेश आदि का विरोध किया।

युंग के अनुसार भी प्रतीक वस्तु का एक कल्पना बिम्ब है जो कि प्रारम्भ में उपचेतन स्तर पर प्रतीत होता है।[2] प्रतीक कलाकार के मन में विद्यमान रहते हैं जो पाठक के मानस पटल पर गहराती शून्यता को ध्वनित करते हैं।[3]

काव्य में प्रतीक के प्रयोग द्वारा उसके सौन्दर्य में वृद्धि होती है। प्रतीक गंभीर से गंभीर अर्थ प्रतिपादन करने में सक्षम रहता है। कभी-कभी प्रतीकों के रहस्यमय हो जाने के कारण उनका संदर्भगत अर्थ ही महत्त्वपूर्ण होता है। इसलिए पाश्चात्य शिल्प के अन्तर्गत प्रतीक को एक आवश्यक तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है।

---

(1) Dictionary of world literature: Shipley Page: 588

(2) Contribution to Analytical Psychology Jung G.G.P: 2

(3) Psycho- Analysis and Aesthetic- Baudowin- Page: 9

बिम्ब::-

बिम्ब चित्र शैली का ही एक अंग है। सर्व प्रथम टी० ई० ह्यूम (T.E. Hume) ने अपनी रचनाओं में बिम्बवाद का संकेत दिया। तत्पश्चात् एजरा पाउण्ड (Ezra Pound) ने चित्रशैली बिम्बयुक्त रचना को इमेज (Image) का नाम दिया। एफ० एस० फ्लिण्ट (F.S.Flint) ने बिम्ब (Image) के सम्बन्ध में विषय या विषयी का प्रत्यक्ष चित्रण, अनावश्यक शब्दों का वर्जन तथा रचना का आधार छन्द न होकर संगीत आदि तीन बातों की घोषणा की।[१]

बिम्बवाद का अभ्युदय रोमांटिकवाद के प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ। रोमांटिक वाद के भावपक्ष की टी०ई० ह्यूम ने अवहेलना की है।[२] उनका कहना है कि कवि का काव्य मन की भाषा को अभिव्यक्ति देता है। यह भाषा हमारी संवेदना को रूपप्रदान करती है।[३]

बिम्ब को पारिभाषित करते हुए सेसिल डेलिवस लिखते हैं--- "काव्य बिम्ब एक प्रकार से ऐन्द्रिय शब्द चित्र है जो कुछ अंशों तक अलंकार पूर्ण होता है जिसके संदर्भ में मानवीय संवेदनाएँ निहित होती है तथा जो पाठक के मन में विशिष्ट रागात्मक भाव उदीप्त करता है।[४]

स्पष्ट है कि कलाकार अपनी भावनाओं का स्मृति पटल

---

(1) Dictionary of world literature- Shipley- Page: 315

(2) Speculations by T.E.Hume: Page: 127

(3) Abid --- Page: 134

(4) Poetic image is a more or less sensuous picture in words to some degree metaphorical with an undernote of some human emoction in it context, but also charged with and releasing in to the readers a special poltic emotion or passion.

--- Poetic Image by C.D. Lewis: Page: 22

पर अलंकार पूर्ण ढंग से संयोजन करता है यह क्रिया बिम्ब सृजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है । काव्य के प्रत्येक अवयव के साथ कवि का भावात्मक सम्पर्क होगा तभी बिम्बों की सहायता से पाठकों को प्रभावित करने वाली रचना का सृजन अपेक्षित है ।

बिम्ब का सम्बन्ध मानव के इन्द्रिय संवेदनों पर आधारित है अत: इन्द्रिय बोध के अनुसार बिम्बों को पांच श्रेणियों - रूप, रस, गंध स्पर्श और शब्द में विभक्त कर सकते हैं । पाश्चात्य साहित्य में भी विजुअल (Visual) आडीटरी (Auditory) गस्टेटरी (Gustatory) आलफैक्टरी (Olfactory) और टैक्टाइल (Tactile) आदि विभाजन किया गया है ।

काव्य में बिम्ब का प्रयोग एक शैली के रूप में होता है जिसके द्वारा कुशल रचनाकार किसी वस्तु विशेष का चित्र रूप हमारे सामने प्रस्तुत कर देता है । पाश्चात्य बिम्बवादियों ने दृष्टि गंध एवं स्पर्श बिम्बों का प्रयोग अधिक किया है । चित्रशैली शिल्प विधि का एक अंग है अत: बिम्ब के सभी प्रकार शिल्प की अभिवृद्धि में सहायक होते हैं ।

पुराख्यान (Myth) :-

पुराख्यान का सम्बन्ध समाज में प्रचलित मान्यताओं, धार्मिक विश्वासों पारलौकिक घटनाओं तथा विश्वासों से है । पुराख्यान का अधिकतर सम्बन्ध धर्म से रहा है । पाश्चात्य और भारतीय काव्य में इन पुराख्यानों का न्यूनाधिक योग रहा है । पाश्चात्य साहित्य में पुराख्यान का उल्लेख इस प्रकार है :--

विशुद्ध वर्णनात्मक गल्प अधिकतर जिसके अन्तर्गत अलौकिक कार्य घटनाएँ तथा मनुष्य आते हैं तथा जिसमें किसी ऐसे विचार विशेष का

मानवीकरण होता है जिसका सम्बन्ध प्राकृतिक या ऐतिहासिक दृग विषय से हो।[1] अरस्तू के काव्यशास्त्र में भी विषादान्तिका के कथानक का एक आधार दन्त कथाओं को स्वीकार किया गया है।[2]

पुराख्यान का क्षेत्र विशाल है। कार्य कारण से परे किसी विशिष्ट सत्य का उद्घाटन करने की क्षमता भी इसमें होती है। प्रतीक की भांति ही पाश्चात्य काव्य-शिल्प में इसे समाहित किया गया है।

रूपकोक्ति (Allegory):-

रूपकोक्ति के द्वारा दोहरे अर्थ का ज्ञान होता है और यह गोपनीय अर्थ सम्पूर्ण कथानक में मिलता है। अत: एक कथा के साथ दूसरा कथा प्रवाह भी चलता रहता है। इसमें वर्ण, बिम्ब, चरित्र, घटना आदि सभी द्विअर्थक होती हैं तथा जड़ चेतन सभी में मानवीय गुणों का समावेश किया जाता है इसलिए ऐसा काव्य उपाख्यान या महाकाव्य के रूप में लिखा जाता है।[3]

रूपकोक्ति अपनी चरमावस्था में प्रतीक के निकट पहुंच जाती है जहां पर प्रस्तुत का लोप हो जाता है। रूपकोक्ति में काव्य और कला दोनों का प्रतीकीकरण होता है। वस्तु तत्व का प्रतीक रूप में होना तो रूपकोक्ति का एक अंग है।[4] इसका प्रयोग प्रतीक तथा अलंकार की भांति ही होता है तब भी इनमें भिन्नता दृष्टव्य है। शिल्प की दृष्टि से प्रतीक बिम्ब तथा अलंकार के समान ही इसका महत्व है।

---

(1) Apurely fictitious, narrative, usually involving supernatural and persons, active or events and embodying some, popular idea concerning natural or historical phemomena- New English Dictionary.

(2) Poetics, Butcher's Translation: VI.9-14

(3) Poetic Process- George Whalley Page: 190

(4) Allegeory A love- C.S. Lewis: Page: 192

इन शैल्पिक उपादानों के अतिरिक्त पाश्चात्य काव्य में प्रगीत (Lyric) शोकगीत (Elegry) एपीग्राम (Epigram) तथा व्यंग्य (Satire) को भी शिल्प विधि का एक अंग माना गया है। एपीग्राम में आक्रोश, टूटन तथा उत्पीड़न के जो स्वर होते हैं वह आधुनिक कविता में देखने को मिल जाते हैं। व्यंग्य रचना में एक गंभीरता ला देता है तथा सुधार की भावना को व्यंजित करता है।

निष्कर्ष::-

पाश्चात्य काव्य-शिल्प के अन्तर्गत उसके उपादानों का विवेचन विद्वानों ने भारतीय आचार्यों से तनिक हट कर किया है। काव्य में छन्द, अलंकार प्रतीक, बिम्ब, पुराख्यान, रूपकोक्ति आदि को शिल्प-विधि के अन्तर्गत समाहित किया गया है। प्रतीक बिम्ब का उल्लेख और उपयोग भारतीय काव्य-शास्त्र में नगण्य है।

भारतीय और पाश्चात्य काव्य-शिल्प का तुलनात्मक अध्ययन करने के बाद स्पष्ट है कि उनकी शिल्प विधि में समताएं तथा विषमताएं दोनों ही परिलक्षित होती हैं। अलंकार रीति में वक्रोक्ति तथा ध्वनि का विवेचन भारत में अलग-अलग सम्प्रदाय के रूप में हुआ है। पाश्चात्य साहित्य में अरस्तू ने भी अपने ग्रन्थों में वस्तु, पात्र, शैली, छन्द, वाक्य संगठन, अलंकार तथा रीति का सूक्ष्म विवेचन किया है। पश्चिम में काव्य को अनुकृति आलोचना आदि मानकर विद्वानों की भी दृष्टि कवि पर केन्द्रित है जब कि भारतीय दृष्टिकोण कविकेन्द्रित होते हुए भी बिल्कुल व्यक्तवादी नहीं है। भारत में कवि के साथ प्रतिभा, व्युत्पत्ति तथा अभ्यास की ही चर्चा होती रही है जब कि पाश्चात्य साहित्य में इतिहास समाजशास्त्र तथा मनोविज्ञान का विवेचन भी होता रहा है। शब्द-शक्ति का गंभीर विवेचन भारतीयों ने अधिक किया। बिम्ब और प्रतीक की आंशिक और गौण चर्चा भारतीय काव्य-शास्त्र में उपलब्ध है।

अलंकार, रीति, वक्रोक्ति तथा शैली को जितना भारतीयों ने समझा है उतना ही पाश्चात्य विद्वानों ने । कवि समय को पाश्चात्य में पुराख्यान की कोटि में रखा गया है । अत: काव्य शिल्प के अन्तर्गत सौन्दर्य वर्द्धन के जितने भी अंग हो सकते हैं उन्हें पूर्व और पश्चिम के विद्वानों ने समान रूप से स्वीकार किया है ।

---::कविता में वस्तु और शिल्प के अध्ययन की प्रासंगिकता::---

भारतीय और पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों, विचारकों तथा विद्वानों ने काव्य में 'वस्तु' और 'शिल्प' पर अपने - अपने विचार प्रस्तुत किए हैं । इन विद्वानों में किसी ने 'वस्तु' का पक्ष लिया है तो किसी ने 'शिल्प' के लिए ही अपना पूर्ण समर्थन प्रदान किया है । 'वस्तु' और 'शिल्प' सम्बन्धी विद्वानों के इस विश्लेषण के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं---

१- काव्य में 'वस्तु' ही प्रधान है ।
२- काव्य में 'शिल्प' ही सर्वोपरि है ।
३- काव्य में 'वस्तु' और 'शिल्प' दोनों की उपादेयता है ।

'वस्तु' और 'शिल्प सम्बन्धी उपर्युक्त दोनों मत अतिवादिता से आक्रान्त हैं । क्यों कि एक के बिना दूसरे का कोई अस्तित्व नहीं । पूर्ण सृजन के लिए हमें वस्तु एवं शिल्प' दोनों का समन्वय करना ही होगा । कोई 'वस्तु' आकार हीन नहीं हो सकती और न आकार वस्तु से अलग किया जा सकता है ।[१]

'वस्तु' और 'शिल्प' दोनों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है । न

---

(१) सिद्धान्त और अध्ययन- गुलाबराय - पृष्ठ- ८६

वस्तु के बिना रूप की कल्पना कर सकते हैं तथा न बिना रूप के वस्तु की उपादेयता ही । आचार्य आनन्दवर्धन ने भी वस्तु (अनुभूति) एवं रूप (रीति) का समन्वय स्वीकार किया है ।[१] भारतीय आचार्यों में 'वस्तु' एवं 'रूप' के सामंजस्य को सभी ने काव्य के लिये शुभ माना है ।[२]

अन्य अनेक भारतीय विचारकों में 'वस्तु' और 'शिल्प' के समन्वय में विश्वास किया है ।[3] रवीन्द्रनाथ टैगोर वस्तु-रूप के सामंजस्य में ही कला की पूर्णता देखते हैं । 'वस्तु' एवं 'रूप' अविभाज्य हैं वे एक दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते ।[4] इसी प्रकार डॉ० दास गुप्ता भी वस्तु एवं रूप के सामंजस्य में ही कला की पूर्णता मानते हैं ।[5] आधुनिक युग के हिन्दी कवियों तथा समीक्षकों ने भी वस्तु एवं रूप (शिल्प) के एकीकरण में ही सृजन को मान्यता प्रदान की है ।

पाश्चात्य विद्वानों में अरस्तु ने वस्तु और रूप के सामंजस्य का विरोध किया है ।[6] परन्तु इसके साथ ही साथ अनेक योरोपीय

---

(१) अरस्तू का काव्य शास्त्र - भूमिका - पृष्ठ - १८

(२) अ - दशरूपक - धनंजय - पृष्ठ - ३१३ - ३१४
  ब - काव्यालंकार - भामह - ५।४
  स - काव्यालंकार - रुद्रट ११।६

(३) भारतीय साहित्य शास्त्र - प्रथम खण्ड - पं० बलदेव उपाध्याय पृ० ४४६

(4) "But when they are indissolubly one, then they find their harmonies in our personality, which is an organic complex of matter and manner"
  Personality- Tagore: Page: 20

(5) Fundamentals of Indian Art- Das Gupta- Page: 137-138

(6) "We must that is to say reject both- the thesis that makrs the aesthetic fact to consist of the content alone(that is the simple impression) and the thesis which makes it to consist of a Junction between form and content, that isofimpression plus expressions."
  Aesthetic- B. Croce- Page: 15

कलाचिन्तकों ने काव्य-वस्तु एवं काव्य-रूप के सामंजस्य में कला का उत्कर्ष माना है। सिडनी वस्तु एवं रूप दोनों को महत्त्व देते हुए मानव प्रकृति के यथार्थ और सजीव चित्रण में ही काव्य की पूर्णता के दर्शन करते हैं।[१] वर्ड्सवर्थ भी वस्तु की यथार्थता और रूप की रमणीयता को काव्य में आवश्यक मानता है।[२]

कॉलरिज आनन्ददायी रूप को वस्तु की मूल प्रकृति से सहज उद्भूत होने में मानता है।[३] वस्तु की मूल प्रेरणा के अनुसार ही साहित्यिक रूप या अभिव्यक्ति की आवश्यकता होती है।[४] वर्सफोल्ड ने वस्तु और रूप पर विचार करते हुए स्वीकार किया है कि प्रकृति स्वयं अपने उद्गारों के लिए उपयुक्त वाहन प्रदान करेगी।[५]

प्रसिद्ध कला समीक्षक लूनाचार्स्की भी मानता है कि काव्य-वस्तु स्वयं अनुकूल रूप की खोज कर लेती है। वे साहित्यिक एवं कलात्मक तत्वों के अभाव में उच्च कोटि के साहित्य की कल्पना नहीं करते।[६] हावर्डफास्ट वस्तु एवं रूप की संश्लिष्टता को मानते हुए दोनों के प्रथक-प्रथक अस्तित्व को अस्वीकार करते हैं। वे इस बात से भी सहमत नहीं है कि श्रेष्ठ वस्तु-तत्व कला में स्वयं ही सुन्दरशिल्प का संयोजन कर देगा तथा अकेले शिल्प के द्वारा ही श्रेष्ठ काव्य का सृजन हो जायेगा।[७] फिशर के

- -

(1) Critical approaches to literature- David Daiches- P.
(2) Ibid. -- Page: 67-68
(3) You can not derive true and permanant pleasure out of any feature of a work which does not arise naturally from the total nature of that work.' Critical Approaches to literature: -- Page: 102
(4) Geeater the inspiration the greater the art required to give it literary expression."
Principles of literary criticism- Page: 47
(5) Ibid. --- Page: 110
(6) The form must correspond to the content as dosely as possible giving it maximum expressiveness and assuring the strongest possible impact on the reader for whom the work is intended." On Art and Literature Lunacharsky- Page: 19
(7) ~~Literature~~ Literature and Reality- Howard Fast: P.48-49,

अनुसार 'रूप' एक प्रकार की व्यवस्था है जिसका संघर्ष वस्तु के साथ होकर उसमें से मौलिक सृजन का प्रणयन होता है ।[१]

भारतीय एवं पाश्चात्य कथाचिन्तकों तथा विद्वानों ने 'वस्तु' एवं 'शिल्प' (रूप) के सामंजस्य में ही काव्य की पूर्णता प्रदान की है ।

निष्कर्ष::-

काव्य हमारे अन्तर्मन की सुप्त और अदृश्य भावनाओं (अनुभूतियों) और विचारों की अभिव्यक्ति है । इसलिए काव्य को वस्तु 'शिल्प' दो भागों में विभक्त कर सकते हैं । वस्तु पक्ष के लिए हिन्दी में विषय - विषय - वस्तु, कथ्य, कथावस्तु आदि शब्दों का प्रयोग होता है । इसी प्रकार शिल्प के लिये भी कला, अभिव्यक्ति, शैली और रूप आदि अनेक समानार्थी शब्दों का प्रयोग मिलता है । परन्तु फिर भी 'वस्तु' एवं 'शिल्प' इन समस्त समानार्थी शब्दों से भिन्न भाव की व्यंजना देते हैं । 'वस्तु' के अन्तर्गत अनुभूति और विचार का योग होता है और इन अनुभूतियों और विचारों को प्रस्तुत करने की मुद्रा (कथन भंगिमा)'शिल्प' है । 'वस्तु' के लिए अंग्रेजी शब्द 'कन्टेन्ट' (Content) तथा शिल्प के लिए टैकनीक (Technique) शब्द का प्रयोग होता है ।

भारतीय काव्य-शास्त्र में वस्तु विवेचन संस्कृत वाङ्मय से लेकर हिन्दी तक मिलता है । भारतीय संस्कृत सम्प्रदायों के विभिन्न आचार्य: 'वस्तु' तत्व की सत्ता को स्वीकार करते हैं । इसी प्रकार से पाश्चात्य साहित्य में भी 'वस्तु' को गौरव प्रदान किया है । भारतीय काव्य-शास्त्र में शिल्प के उपादान अलंकार, वक्रोक्ति, ध्वनि, रीति, कवि समय, छन्द

---

(१) The Necessity of Art- Ernest Fisher. P. 124

आदि में अन्वेषित किए हैं इसी प्रकार से पाश्चात्य विद्वानों ने भी प्रतीक, बिम्ब, अलंकार, पुराख्यान, रूपकोक्ति, छन्द आदि में शैल्पिक उपादानों की कल्पना की है। भारतीय तथा पाश्चात्य दोनों ही विचारकों ने 'वस्तु' एवं 'शिल्प' के ऊपर मनन करते हुए उन दोनों के मंजुल सामंजस्य में ही काव्य की पूर्णता तथा उसके उत्कर्ष को स्वीकार किया है। 'वस्तु' और 'शिल्प' का उचित समन्वय ही मौलिक सृजन की उद्भावनाओं का संकेत देता है।